Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. IV, Issue VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

आधुनिक हिन्दी दलित विमर्श तथा मुन्शी प्रेमचन्द की कालजयी दलित कहानी एवं उनके पात्रों का अध्ययन

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. IV, Issue VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

आधुनिक हिन्दी दलित विमर्श तथा मुन्शी प्रेमचन्द की कालजयी दलित कहानी एवं उनके पात्रों का अध्ययन

Santosh

Research Scholar, Singhania University Jhunjhunu, Rajasthan, India

----------♦----------

प्रस्तावना एवं पृष्ठ भूमि :–

कोई भी साहित्यकार युगीन परिस्थितियों से निष्चित रूप से प्रभावित होता है, लेकिन उसके व्यक्तिगत जीवन की घटनाएं भी उसके साहित्य पर अनजाने में ही अपनी प्रतिच्छाया डालती है। प्रेमचंद साहित्य भी इस तथ्य का अपवाद नहीं है। प्रेमचंद का जीवन काफी संघर्षमय परिस्थितियों में गुजरा। इन्हीं परिस्थितियों ने उनके जीवन को घटना संकुल बना दिया, जिससे उन्हें जीवन में संघर्ष करने का अदम्य साहस प्राप्त हुआ।

किसी भी कलाकार की कृतियों को अथवा साहित्य की रचनाओं को पढने से पूर्व हम यह ज्ञात करना चाहते हैं कि उस कलाकार अथवा साहित्यकार की रचनाएं किस प्रकार की होंगी या उसने समाज के कौन से पहलू को छेड़ा होगा तो उस कलाकार के घर के बारे में, उसके जीवन के बारे में और किस वातावरण में रहकर उसने साहित्य रचना की होगी, इन सब बातों का अनुमान हमें उसकी रचना को पढ़ने से पहले ही लगा लेना चाहिए। क्योंकि कोई भी कलाकार, साहित्यकार अथवा चित्रकार अपनी कृतियों में, रचनाओं में और चित्रों में अपना व्यक्तित्व लाये बिना नहीं रह सकता। जब कोई सफल कलाकार अपनी कृतियों में यथार्थ का चित्रण लाये बिना नहीं रह सकता या यूं कह सकते हैं कि अपने आस–पास के वातावरण से प्रभावित होकर मानव–जीवन के बहुत समीप नहीं जाता। तब तक वह सफल कलाकार नहीं बन सकता।

प्रेमचंद जी का घर अथवा परिवार बहुत ऊंचा या सम्पन्न नहीं था। वे निर्धन परिवार से संबंधित थे और जैसा उन्होंने स्वयं कहा है :

'मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है, जिसमें कहीं–कहीं गड्ढे तो हैं, पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खड्डों को स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ की सैर के शौकीन हैं उन्हें तो निराषा होगी।'

जन्म एवं बचपन : – प्रेमचंद का जन्म शनिवार 31 जुलाई, 1880 को एक निम्न–मध्यमवर्गीय परिवार में बनारस से पांच मील दूर लमही गांव के कच्चे पुष्तैनी मकान में हुआ। उनके पिता अजायबलाल श्रीवास्तव डाक मुंषी थे। उन्होंने पुत्र का नाम रखा 'धनपतराय' और ताऊ ने 'नवाबराय'। हिंदुस्तान की नई जनवादी, राष्ट्रीय चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाले और अपने साहित्य में निरन्तर सामाजिक रूढ़ियों एवं अंधविष्वासों का विरोध करने वाले इस महान साहित्यकार के जन्म के साथ भी एक रूढ़ि जुड़ी थी। प्रेमचंद का जन्म तीन लड़कियों के जन्म के बाद हुआ था, ऐसा लड़का तेंतर कहलाता है। और ऐसी संतान के विषय में यह विष्वास किया जाता है कि वह मां बाप को खाए बिना नहीं रहती। (इस रूढ़ि को नकारने के लिए प्रेमचंद ने 'तेंतर' नामक कहानी लिखी थी।

प्रेमचंद का बचपन काफी मौज–मस्ती में बीता। खेतों में कभी ईख तो कभी मटर उखाड़ लाना, तो कभी आम तोड़कर खाना उनका नित्य–कर्म था, जिसके लिए उनकी षिकायतें रोज घर पर आती थीं और उन्हें डांट–फटकार भी पडती थीं। पेड़ पर निषाना लगाने में प्रेमचंद माहिर थे और गुल्ली–डंडा खेलने में कुषल। उनके प्रिय खेल गुल्ली–डंडा और कबड्डी ही थे। प्रेमचंद जब छह वर्ष के थे, तब 'कज़ाकी' नाम का डाक हरकारा उसके जीवन में आया और उनकी स्मृति में इतनी गहराई से बैठ गया कि वह प्रेमचंद की एक कहानी का नायक व शीर्षक ही बन गया। **(प्रेमचन्द, मानसरोवर भाग–5, कज़ाकी पृ0 156)** जब वे आठ वर्ष के थे तब लमही गांव से करीब सवा मील दूर एक दूसरे गांव में प्रेमचंद की उर्दू–फारसी की षिक्षा प्रारम्भ हुई। इन दिनों की स्मृतियों को प्रेमचंद ने अपनी कहानियों, 'चोरी', 'रामलीला', 'कज़ाकी' तथा 'होली की छुट्टी' आदि में अंकित किया है।

मां की मृत्यु तथा विमाता का आगमन :– प्रेमचंद की मां का नाम आनंदी देवी था। वे गोरे रंग की, मझोले कद वाली, मीठी आवाज और छरहरे शरीर वाली थीं। वे संग्रहणी की पुरानी मरीज थीं। प्रेमचंद जब आठ वर्ष के थे, वह लगातार छह महीने तक रोग शैय्या पर पड़ रहीं ओर उनका प्राणांत हो गया। इस प्रकार मात्र आठ वर्ष की आयु में उनकी सर से मां का साया उठ गया। दादी के लाड़ प्यार में वे पलने लगे। उनके पिता ने पत्नी की मृत्यु के दो वर्ष पश्चात् पचास वर्ष की आयु में पुनर्विवाह कर लिया। तभी दो वर्षों के पष्चात् प्रेमचंद के सर से दादी का साया भी उठ गया। और तब प्रेमचंद विमाता के साथ रहने के लिए बाध्य हुए। विमाता से उन्हें कभी मातृसुलभ स्नेह प्राप्त नहीं हुआ। प्रेमचंद को सोने के लिए मात्र एक कोठरी ही नसीब हुई। इन पारिवारिक परिस्थितियों ने नवाब के हृदय पर हमेषा के लिए एक गहरा घाव अंकित कर दिया। प्रेमचंद के कथा साहित्य में मातृत्वहीन बालकों के लिए करूणा एवं सहानुभूति इन्हीं परिस्थितियों का परिणाम है। मातृहीन बालकों को प्रेमचंद संसार का सबसे निरीह एवं दयनीय प्राणी मानते थे। ''मातृहीन बालक संसार का सबसे करूणा जनक प्राणी है। दीन से दीन प्राणियों को भी ईष्वर का आधार होता है, जो उसके हृदय को सम्भालता रहता है। मातृहीन बालक इस अधिकार से वंचित होता है। माता ही उसके जीवन का आधार होती है। माता के बिना वह पंखहीन पक्षी है।'' **(गृहदाह–मानसरोवर भाग –6 पृ0 123)**

पुस्तकों के प्रति लगाव और घर के प्रति उदासीनता : – माता–पिता के व्यवहार ने प्रेमचंद को घर के प्रति उदासीन बना

www.ignited.in

दिया। जिसके फलस्वरूप उन्हें बीड़ी–सिगरेट जैसी बुरी आदतों ने भी घेर लिया। बारह–तेरह वर्ष की आयु में उन्हें बीड़ी–सिगरेट पीने का चस्का लग चुका था और विमाता की लापरवाही के कारण उन्हें यौन–जीवन से सम्बंद्ध बातों का ज्ञान किशोरावस्था में ही हो गया जो उनके लिए घातक मानी जाएंगी।

परिस्थितियों में बदलाव आया और प्रेमचंद का लगाव पुस्तकों में झलकने लगा। पुस्तकें उनके अकेलेपन की साथी बनी। इस विषय पर वे स्वयं लिखते हैं, 'उन दिनों मेरे पिता गोरखपुर में रहते थे और मैं भी गोरखपुर मिषन स्कूल में आठवीं में पढ़ता था, जो तीसरा दर्जा कहलाता था। रेती पर बुद्धिलाल नाम का एक बुकसेलर रहता था। मैं उसकी दुकान पर जा बैठता और उपन्यास ले–लेकर पढ़ता था, मगर दुकान पर सारे दिन बैठना संभव नहीं था, इसलिए मैं उसकी दुकान से अंग्रेजी पुस्तकों की कुंजियां ले लेकर अपने स्कूल के लड़कों के हाथ बेचा करता था और इसके मुआवजे में दुकान से उपन्यास घर लाकर पढ़ता था। दो–तीन वर्षों में मैंने सैंकड़ों ही उपन्यास पढ़ डाले होंगे। उपन्यासों का स्टॉक समाप्त हो गया तो मैंने नवलकिषोर प्रेस से निकले हुए पुराणों के ऊर्दू अनुवाद पढ़े।

शोध रूपरेखा :–

मुन्षी प्रेमचन्द एक बहुत ही उचचश्रेणी के कहानीकार है इस शोध प्रबन्ध में हम मुख्य रूप से आधुनिक हिन्दी दलित विमर्ष तथा प्रेमचन्द की कालजयी दलित कहानी एवं उनके पात्रों पर आध्ययन करगे और मेरे इस शोध का मुख्य आधार मुन्षी प्रेमचन्द की कहानियॉ होगी जो उन्हौने दलित विमर्ष पर लिखी है ।

प्रेमचंद ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरूआत उर्दू से की। अमृतराय ने उनकी जीवनी 'प्रेमचद : कलम का सिपाही' के परिषिष्ट दो में प्रेमचंद की कहानियों का काल निर्देष किया है। उसके अनुसार हिंदी में प्रेमचंद की पहली कहानी (सौत) दिसम्बर 1915 में 'सरस्वती' में प्रकाषित हुई। 1916 जून में इसी पत्रिका में उनकी प्रख्यात कहानी 'पंच परमेष्वर' प्रकाषित हुई जिसमें दिखाया गया था कि ग्रामीण जनता यदि पंचायत की मदद से अपने झगडों का फैसला कर सके तो उसकी अनेक समस्याएं हल हो सकती है।

प्रेमचंद की अधिकांष कहानियों में दलित की समस्याओं को ग्रामीण जनता की आम समस्याओं का एक अंग बनाकर ही चित्रित किया गया है। प्रेमचंद की विषेषता यह है कि ब्रिटिष साम्राज्य के प्रति निरंतर संघर्ष करते हुए भी उन्होंने देष के अन्य वर्गों के बीच मौजूद अन्तर्विरोधों को नजर से ओझल नहीं होने दिया। ग्रामीण समाज का चित्रण करते हुए उन्होंने अपनी कहानियों का केन्द्रीय मुद्दा वहां के शोषित–पीडित जन के उस आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीडन को बनाया जिसमें एक तरफ देसी राजे–नवाब, ऊंची जातियों के जमींदार, महाजन और पंडित पुरोहित थे, जबकि दूसरी ओर उनके साझेदार साम्राज्यवाद के प्रतिनिधी, नौकरषाही और पुलिस आदि।

अक्टूबर 1956 में सरस्वती प्रेस, बनारस से 'ठाकुर का कुआं' शीर्षक से प्रेमचंद की नौ कहानियों का संग्रह प्रकाषित हुआ। इन कहानियों के चयन के पीछे चयनकर्ता के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए प्रस्तावना में कहा गया है।

इस प्रकार यह कहानी संग्रह समस्या की वास्तविकता, उसके हल की संपूर्ण संभावनाओं और उद्धार के व्यवहारिक पक्ष सभी के लिए आदर्ष का काम करती है। हमारा विष्वास है कि इसका प्रकाषन पीडित वर्गों को ऊंचा उठाने के आंदोलन में लाभदायी होगा। **(प्रेमचन्द, ठाकुर का कुआं, पृ0 4)**

प्रेमचंद अपनी कुछ कहानियों में पात्रों की जाति का उल्लेख नहीं करते। ऐसे में उनके रीति–रिवाजों या आचार–व्यवहार से ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका संबंध दलित वर्ग से है। उदाहरण के लिए उनकी कहानी, 'घरजमाई' को लिया जा सकता है। सौतेली मां के अत्याचारों की मात्र कल्पना से कहानी का नायक हरिधन गांव से भाग कर ससुराल में जाकर धरजमाई बन जाता है। और वापस भागकर अपने घर में ही सुख की सांस लेता है। कहानी में कहीं भी उसकी जाति का उल्लेख नहीं है। केवल दो संकेतों से नतीजा निकलता है कि वह दलित पात्र है। पहला तो यह है कि वह अपने बाल सखा, आमों के बाग के रखवाले मंगरू, के सामने एक प्रस्ताव रखता है कि वह उसकी गाय चरा दिया करेगा। दूसरा संकेत सौतेली मां के साथ उसके निम्नलिखित वार्तालाप से मिलता है : 'एक दिन उसे सुना, गुमानी (उसकी पत्नी) ने दूसरा घर कर लिया। मां से बोला तुमने सुना काकी। गुमानी ने घर कर लिया। काकी ने कहा, घर क्या कर लेगी ठट्ठा है। बिरादरी में ऐसा अंधेर पंचायत नहीं अदालत तो है। हरिधन ने कहा : नहीं काकी, बहुत अच्छा हुआ, ला महाबीर जी का प्रसाद चढा आऊं। मैं तो डर रहा था, कहीं मेरे गले न आ पडे। **(घरजमाई – प्रेमचन्द, मानसरोवर, 1 पृ0 157)**

ऐसी ही एक और कहानी है, **'सुभागी'**। कहानी की नायिका सुभागी बाल विधवा है। उसके गुणों के कारण उसके लिए अनेकों रिष्ते आते हैं लेकिन वह दुबारा विवाह के लिए राजी नहीं होती। अंत में अपने पिता के मित्र और दुख की घड़ी में साथ देने वाले बाबू सजनसिंह के प्रस्ताव को नहीं ठुकरा पाती और उनके पुत्र के साथ शादी पर रजामंद हो जाती है। कहानीकार ने अस पूरी कहानी में भी नायिका की जाति का उल्लेख नहीं किया। केवल दो सूत्रों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि नायिका पिछडी जाति की थी। 'अब सुभागी जवान हुई तो लोग तुलसी महतों पर दबाव डालने लगे कि लडकी का कहीं घर कर दो। जब हमारी बिरादरी में इसकी कोई निंदा नहीं है तो क्यों सोंच विचार करते हो?' तुलसी ने कहा, 'भाई मैं तो तैयार हूं, लेकिन जब सुभागी भी माने। वह तो किसी तरह राजी ही नहीं होती। **(प्रेमचन्द, मानसरोवर, सुभागी, पृ0 262)**

'मुक्ति मार्ग' नामक कहानी के दो प्रमुख पात्र हैं – झींगुर और बुद्धू। बुद्धू गड़ेरिया है, लेकिन प्रेमचंद ने झींगुर की जाति नहीं बताई। तो भी कहानी में एकाध संकेत ऐसा है जिससे यह नतीजा निकाला जा सकता है कि वह अछूत तो नहीं लेकिन दलित वर्ग का ही है। बुद्धु को ललकारते हुए वह कहानी के शुरू में ही कहता है : 'झींगुर, तो तुम्हारा चक्कर बचाने के लिए मैं अपना खेत क्यों कुचलाऊंगा? ड़ांड़े ही पर से ले जाना है तो खेतो के ड़ांड़े से क्यों नहीं ले गए? क्या मुझे कोई चूहड़–चमार समझ लिया है? या धन का घमंड़ हो गया है? लौटाओ इनको। **(प्रेमचन्द मानसरोवर 3, मुक्तिमार्ग, पृ0 239)**

लेकिन जब बुद्धू झींगुर की ईख में आग लगा देता है तो झींगुर एक फसल की बरबादी भी नहीं झेल पाता और सन लपेटने वाली कल में मजदूरी करने लगता है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि वह बहुत ही छोटा किसान रहा होगा। इस कहानी में दलित वर्ग के भीतर जातियों के अन्तर्विरोधों को लक्षित किया जाता है जो हिंदू वर्ग की विड़म्बना को दर्षाता

है। 'मंत्र' के नायक बूढ़े भगत की जाति का भी कहानी में कहीं कोई जिक्र नहीं है। लेकिन यह अनुमान लगाना गलत न होगा कि वह दलित वर्ग का ही सदस्य रहा होगा। कहानीकार ने बूढ़े के शहर से कई मील दूर छोटे से घर का चित्रण इस प्रकार करता है :

बूढ़ा नारियल पीता था और बीच–बीच में खांसता था। बुढिया दोनों घुटनियों में सिर डाले आग की ओर ताक रही थी। एक मिट्टी के तेल की कुप्पी ताक पर जल रही थी। घर में न चारपाई थी न बिछौना। एक किनारे थोड़ी सी पुआल पडी हुई थी। इसी कोठरी में एक चूल्हा था। बुढ़िया दिनभर सूखी लकड़ियां और उपले बंटोरती थी। बूढ़ा रस्सी बांटकर बाजार में बेच आता था। यही उनकी जीविका थी। **(प्रेमचन्द मानसरोवर 5, मंत्र, पृ0 287)**

ईंधन के लिए लकड़ियां चुनना, रोजी–रोटी के लिए सन की रस्सी, डोरी बुनना, सांप के कांटे का झाड़ फूंक से उपचार करना, सारे संकेत यही बताते हैं कि बूढा भगत कंजर, भील या नट जैसे किसी कबीले का सदस्य रहा होगा।

'पूस की रात' कहानी का नायक हल्कू भी किसी पिछड़ी जाति का ही रहा होगा। एक छोटा किसान होने के बावजूद उसे अपनी छोटी–मोटी जरूरतों को पूरा करने के लिए दूसरों की मजदूरी करनी पड़ती है। हल्कू और मुन्नी (उसकी पत्नी) के निम्नलिखित वार्तालाप से भी उनकी सामाजिक स्थिति पर प्रकाष पडता है, मुन्नी मजदूरी के पक्ष में अपनी दलील दुहराती है, 'तुम छोड दो, अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है। मजूरी करके लाओ वह भी उसी में झोंक दो, उस पर से धौंस। **(प्रेमचन्द मानसरोवर 1, पूस की रात पृ0 158)** मुन्नी के शब्दों को सुनकर ऐसा लगता है, जैसे नया भारतीय किसान उभर रहा है। नई ग्रामीण स्थितियां नजर आ रही हैं। गांव के जीवन की हलचलें वहां नए आकारों में प्रकट हो रही है।

'मानसरोवर 7' में संकलित कहानी 'आत्माराम' का नायक महादेव सुनार है। 'मानसरोवर 8' में संकलित कहानी 'पषु से मनुष्य' का नायक दुर्गा माली है। इसी भाग में संकलित एक और कहानी 'विषम समस्या' का नायक एक चपरासी है। कहानीकार ने उसे जाति क्या, नाम तक देने की जरूरत महसूस नहीं की। सब उसे गरीब कहते है। हो सकता है कि गरीब उसका नाम ही हो। 'मानसरोवर 8' में ही संकलित एक और कहानी 'बलिदान के पात्र हरखू और उसका पुत्र गिरधारी कुरमी किसान है।

प्रेमचंद जिस समाज में दिलचस्पी रखते थे वह ऐसे किसानों और खेत मजदूरों का समाज था जिसमें अछूत और पिछड़ी जातियों के सदस्यों का ही बहुमत था। ग्रामीण परिवेष के जो पात्र उन्होंने अपनी कहानियों के लिए चुने उनमें से अधिकांष कुरमी, काछी, पासी, धोबी, अहीर, गड़ेरिया, माली, सुनार, चमार आदि जाति के थे।

यहां यह याद रख लेना बेहतर होगा कि आज अनुसूचित जातियां, पिछड़ी हुई जातियां और अनुसूचित जनजातियां जैसे भेद प्रेमचंद के जमाने में न थे। उनके जमाने में शुद्र आदि मध्यवर्ती जातियों और अछूत जातियों को पिछडी जातियां या दलित जातियां कह दिया जाता था।

'ठाकुर का कुआं' में प्रेमचंद की 9 कहानियां संकलित की गई है। उनकी रचना मोटे तौर पर 1924 और 1934 के बीच हुई। मोटे तौर पर इस संग्रह की एक कहानी 'लोकमत का सम्मान' अमृतराय की सूची में नहीं है, इसलिए फिलहाल इसका काल निर्धारण संभव नही।

'सौभाग्य के कोड़े' शीर्षक कहानी जून 1924 में प्रकाषित हुई। इसका नायक नथुवा नाम का एक अनाथ बालक है। राय भोलानाथ ने उसे एक ईसाई के पंजे से छुड़वाया था और वह उनकी रोटियों पर पल रहा था। उसका काम साहब के बंगले में झाडू लगाना था और इसीलिए उसे अन्य लोग भंगी कहते थे।

रायसाहब अपनी एकमात्र लाड़ली पुत्री रत्ना को अपनी दया पर पलने वाले भांजों–भतीजों और नौकर चाकरों से अलग रखते थे। रत्ना बड़ी सुषील और दयामयी थी। 'इससे वह लौंड़ा उसके मुंह लग गया था।' एक दिन सहज कुतूहलवष नथूना रत्ना के नरम बिस्तर पर लेट गया वह इस पर लेटकर सुख का अनुभव कर ही रहा था कि राय साहब ने उसकी हरकत देख ली और हंटर से उसे बेहद पीटा और बंगले से निकाल दिया। वहां से निकलकर नथुवा अपनी बिरादरीवालों की शरण गया। पांच वर्ष बाद नाथूराम यहां से 'समाज का भूषण' बनकर निकला और वह कुलीन ब्राह्मण की तरह आचार–विचार से रहने लगा और ना0रा0 आचार्य या सिर्फ आचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

आचार्य महादेव विदेष गए और वहां से नाम, धन और विद्या प्राप्त करके देष लौटे। अब वह मदन कंपनी की तमाम शाखाओं के निरीक्षक थे। उनकी तनख्वाह तीन हजार रूपए मासिक थी। लखनऊ में उनकी मुलाकात रत्ना और रायसाहब से हुई। यह मानकर कि ऐसा आचारवान पुरूष महान जाति का ही हो सकता है रायसाहब ने रत्ना का विवाह आचार्य से करा दिया। रायसाहब नथुवा को नहीं पहचान सके और रत्ना की राय है कि उनसे इस रहस्य को गुप्त ही रखा जाए वर्ना वह आत्महत्या कर लेंगे।

इस कहानी का बल इस बात पर है कि दलितों में प्रतिभा की कमी नहीं, कमीं इस बात की है कि उन्हें अपनी प्रतिभा विकसित करने का और प्रदर्षित करने का मौका ही नहीं मिलता। प्रेमचंद ने कहानी के अंत में रत्ना से ही कहलवाया है कि उन दोनों में बचपन से ही प्रेम संबंध था। आचार्य, जानती हो मैं कौन हूं। जब हम तुम दोनों इसी बगीचे में खेला करते थे, मैं तुमको मारती थी और तुम रोते थे, मैं तुमको अपनी जूठी मिठाइयां देती थी और तुम दौड़कर लेते थे, तब भी मुझे तुमसे प्रेम था। हां, वह दया के रूप में व्यक्त होता था।

शायद कहानीकार ने यह संवाद यह सोंचकर रखा हो कि इस कहानी से भारतीय युवतियां प्रेरणा प्राप्त करें कि प्रेम जैसे उदात्त और मानवीय भावना के आगे जात–पात का विचार कितना तुच्छ है। आजकल यह कहानी एकदम साधारण जान पड़ती है। पाठक सोंच सकता है कि जब रहस्य को गुप्त ही रखा गया तो यह विवाह अन्तर्जातीय कैसे हुआ? यह तो क्रांतिकारिता नहीं, बल्कि यह तो समाज सुधार की परिधी में भी नहीं आता। लेकिन कहानी के साथ न्याय करने के लिए उस युग को दखना होगा। तब अन्तर्जातीय विवाह के समर्थक नहीं थे। फिर भी यह कहानी गांधीवादी आदर्ष से मेल नहीं खाती। इस आदर्ष के अनुसार आचार्य का शादी से पहले जाति छुपाना

क्षम्य नहीं। प्रेमचंद की नजर में यह क्षम्य लगता है। इस नजरिये से 1924 में एक ब्राह्मण युवती का विवाह एक भंगी युवक से करा देना एक प्रगतिषील कदम है।

मई 1927 में प्रेमचंद की कहनी 'मंदिर' प्रकाषित हुई। यह अछूतों के मंदिर प्रवेष की समस्या पर लिखी गई। विधवा सुखिया का एकमात्र बच्चा जियावन बीमार था। स्वप्न में अपने स्व0 पति के निर्देषानुसार वह मनौती मांग बैठी। 'भगवान, मेरा बालक अच्छा हो जाए तो मैं तुम्हारी पूजा करूंगी। अनाथ विधवा पर दया करो।' अपने चांदी के कड़े गिरवी रखकर अछूत सुखिया पूजा की थाली सजाकर मंदिर पहुंची लेकिन उसे मंदिर के भीतर जाने से रोक दिया गया। पुजारी को चमारिन के छू लेने से भगवान अपवित्र हो जाने का भय था। बालक की हालत बिगड़ती ही गई। रात को तीन बजे एक हाथ में थाली और दूसरे में जियावन को लेकर वह मंदिर जा पहुंची। वह ताला तोड़ कर मंदिर में घुसना ही चाहती थी कि मंदिर का पुजारी जाग गया। पुजारी का चोर–चोर का शोर सुनकर वहां भगत मंड़ली जमा हो गई। जिसे बालक उसके हाथ से गिरकर मर गया। इसके बाद सुखिया ने एक बार फिर बालक के मुख की तरफ देखा और वह मूर्च्छित हो कर गिर पड़ी। प्राण निकल गए। बच्चे के लिए प्राण दे दिए।

'मंदिर' कहानी दलित और शोषित चमार जाति की एक सदस्य, सुखिया के बलिदान और विद्रोह की कहानी है। यह उस हृदयहीन व्यवस्था के प्रति दुखात विद्रोह की कहानी है जो भूमिहीन, निर्धन और निर्बल तबकों के आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न में धर्म से भरपूर सहायता लेती है। लेकिन जाहिर तौर पर धर्म और वास्तव में अधर्म और अन्याय पर आधारित व्यवस्था के विरूद्ध चमारिन सुखिया का यह विद्रोह प्रेमचंद की निजी विषेषता है। वह इस बात का प्रमाण है कि प्रेमचंद न केवल अपने युग के सामजिक यथार्थ पर अपनी पकड बनाए हुए थे बल्कि भविष्य में झांककर उसे अपनी आंखों के सामने विकसित होता देख रहे थे।

अंधविष्वास की षिकार गरीब सुखिया बच्चे को किसी वैद्य हकीम के पास ले जाने कि बजाय वह उसे मंदिर ले जाना चाहती है। जब पुजारी जी उसे अंदर जाकर पूजा करने की अनुमति नहीं देते तो सुखिया कहती हैं, 'मैंने कल सपना देखा था महाराज जी कि ठाकुर की पूजा कर तेरा बालक अच्छा हो जाएगा। तभी दौडी आई हूं। मेरे पास एक रूपया है। वह मुझसे ले लो, पर मुझे एक छन भर ठाकुर जी के चरणों में गिर लेने दो।

प्रेमचंद की विषेषता यह है कि वह वर्ग के आर्थिक शोषण के पक्ष को कभी अपनी नजर से ओझल नहीं होने देते। आखिर इस शोषण को बरकरार करने के लिए ही जो जात–पात, धर्म–अधर्म और ऊंच–नीच का तामझाम तैयार किया है।

विशय – सूची

अध्याय एकरू प्रेमचंद व्यक्तित्व और कृतित्व

अध्याय दोरू प्रेमचंद की संवदेना और दलित विमर्श

अध्याय तीनरू आधुनिक हिंदी दलित विमर्श

अध्याय चाररू प्रेमचंद की कालजयी दलित कहानियां और उसके पात्र

उपसंहार

आधार ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधुनिक हिंदी–दलित विमर्श

भारतीय समाज में व्याप्त वर्ण–व्यवस्था, जाति, अस्पृष्यता शोषण, दमन, उत्पीडन के खिलाफ संघर्ष की लंबी प्रक्रिया रही है। प्राचीन समय से लेकर आज तक अन्याय और वर्चस्व के विरूद्ध सामाजिक परिवर्तन के लिए धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आंदोलन चलते रहते हैं। समय और काल परिवेष के अपने दबावों के फलस्वरूप यह आंदोलन तीव्रता और ठहराव से गुजरते हुए नया आकार पाता रहा है। सामाजिक परिवर्तनों की प्रक्रिया को अग्रसर करते हुए तथा तमाम आयामों से गुजरते हुए दलित वर्ण–व्यवस्था के बस एक सषक्त आंदोलन और गभीर चिंतन है।

हिंदू व्यवस्था की अमानवीयता का परिणाम इतना भयानक है कि आज भी भारतीय समाज हजारों जातियों में बंटा हुआ है। जातिगत भेदभाव आज भी उसी प्रकार जडें जमाए हुए हैं, जैसा कि हजारों वर्षों पहले था। दलित विमर्ष इस जड़ को उखाड़ फेंकने के लिए कृतसंकल्प है। ओमप्रकाष वाल्मीकि के शब्दों में, भारतीय समाज में वर्ण–व्यवस्था के आधार पर जो बंटवारा हुआ, उसकी ही देन है जातिभेद।

उल्लेखनीय है कि वर्णाश्रम–व्यवस्था पुनर्जन्म ओर कर्मफल के तर्क पर आधारित है। इसके तर्कों के अनुसार जाति स्वयं भगवान का करिष्मा है। दलितों के लिए सवर्णों की सेवा करना आवष्यक बना दिया गया और यही उनकी मुक्ति का मार्ग था। या इसे उनकी गुलामी का मार्ग भी बताया जा सकता है। परन्तु वर्ण–व्यवस्था क पक्षधर ये मानने को तैयार ही नहीं है कि विकास को रोक देने वाली यह व्यवस्था प्रगति पथ को सीमित कर देती है और समाज को संकीर्णता में बांध देती है।''
ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित चेतना और हिंदी कथा साहित्य (लेख), समकालीन जनमत, वर्ष 21 अंक 4, अक्टूबर–दिसम्बर 2002, पटना पृ0 50

हिदू समाज की सारी मान्यताओं को यदि देखा जाए तो वह हिंदू समाज के विरोध में ही खड़ी नजर आती है। समाज में ऐसे अनेक प्रचलित मुहावरे, लोकोक्तियां, कहावतें हैं जो दलितों के प्रति घृणा भाव दर्षाते है। जैसे किसी भी व्यक्ति से बातचीत करने पर यह जुमला सुनने को मिल जाता है, 'क्या मुझे चोर–चमार समझ रखा है।' ऐसे अनकों मुहावरे और कहावतें हैं जिनको इकट्ठा करने पर पूरे ग्रंथ की रचना की जा सकती है। एक कहावत है कि 'कोदो सावां अन्न नहीं, डोम चमार जन नहीं।' यह कहावत दलितों की स्थिति बयान करती है।

भारतीय समाज–व्यवस्था की भेदभावपूर्ण क्रूर प्रणाली ने धार्मिक चोगा पहनकर और मर्यादा का आवरण ओढ़कर ब्राह्मणवाद का रूप धारण किया, जिसने धार्मिक, कर्मकांड, अंधविष्वास और जन्मना ऊंच नीच की भावना को वैधता प्रदान की। आज भी ये कुरीतियां विभिन्न नियमों, कानूनों के बावजूद अपनी भयानकता के साथ हमारे समाज में विद्यमान है।

बुद्ध द्वारा (ईसा पूर्व 563–983 ई. पूर्व) असानता के खिलाफ छेड गया संघर्ष पूरे बौद्ध काल में विद्यमान रहा, लेकिन बौद्ध धर्म के समापन के साथ–साथ प्रतिरोध की गति धीमी पड गई। सिद्धों–नाथों ने भी इस आंदोलन में अपनी भूमिका निभाई और

www.ignited.in

इस आंदोलन को जगाए रखा। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में म0 ज्योतिबा फूले ओर 20 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में डॉ0 अम्बेडकर द्वारा छेडा गया सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आंदोलन दलित विमर्ष का वैचारिक आधार बना।

डॉ0 अबेडकर ने मुख्य रूप से भारतीय गांव की अवधारणा को शत्रु माना था। उनका कहना था कि भारतीय गांव हिंदू व्यवस्था के कारखाने हैं। उनमें ब्राह्मणवाद, सामंतवाद और पूंजीवाद की साक्षात् अव्यवस्थाएं देखी जा सकती है।

फूले और अम्बेडकर का आंदोलन मुख्य रूप से महाराष्ट्र मे ही रहा इसलिए दलित चिंतन की सर्वप्रथम अनुगूंज मुख्य (प्रखर) रूप से मराठी में ही सुनाई पडी। दलित अस्मिता का यह संघर्ष सचेतन रूप में महाराष्ट्र से शुरू होकर अखिल भारतीय स्वरूप ले चुका है।

दलित विमर्ष ने तथाकथित मुख्यधारा के साहित्य को कठघरे में ला खड़ा किया है और साहित्य के वास्तविक मर्म को समझाने का यथार्थवादी प्रयास साहित्य की सभी विधाओं के माध्यम से किया है। दलित का सम्बंध चेतना से हैं, दलित को दया और सहानुभूति से घृणा है। यह हीनता की ग्रंथी को तोडकर दलित अस्मिता की प्रखरता को स्थापित करने की ओर अग्रसर है।

आधुनिक दलित विमर्ष को समझने के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर दृष्टि डालना आवष्यक है :–

(1) दलित का आशय

(2) दलित चेतना / दलित आंदोलन

(3) दलित साहित्य

(4) दलित साहित्य की अवधारणा।

(1) दलित का आशय : सदियों से जिसे साहित्य और समाज में हाषिए पर फेंक दिया गया था। जिसे शुद्ध, हरिजन, अवर्ण, पंचम, अतिषूद्र आदि नामों से विहित करके दया का पात्र बना दिया गया था, वही आज प्रखर आत्मबोध के साथ इन सारी शब्दावलियों को ठुकराकर स्वयं 'दलित' के रूप में अपनी अस्मिता का बोध करा रहा है। प्रख्यात मराठी दलित साहित्यकार शरण कुमार लिंबाले के शब्दों में, 'दलित को 'दया' से घृणा है, उस दया और सहानुभमि नहीं 'अधिकार चाहिए। **शरण कुमार लिंबाले (साक्षात्कार) समकालीन जनमत (पाक्षिक), वर्ष 15, अंक 7–8, अप्रैल 1996, नई दिल्ली, पृ0 16**

'दलित' शब्द और 'दलित साहित्य' अपनी अर्थवक्ता, व्यापकता, सार्थकता तथा अस्मितागत बोध के रूप में आज विद्वज्जनों के मध्य साहित्यिक विमर्ष के विषय बने हुए हैं। अतः 'दलित का आषय' व्यापक दृष्टि और बहस की मांग करता है।

दलित शब्द के अन्दर कुचले गए, दबाए गए जनों की जीवन कहानी उतनी ही पुरानी है, जितनी भारतीय हिंदू संस्कृति पुरातन है। चातुर्वण्य व्यवस्था भारतीय संस्कृति की अपनी एक विचित्र विषेषता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैष्य और शूद्र इन चारों वर्णों पर आधारित चातुर्वण्य–व्यवस्था ऋग्वैदिक कल से लेकर अद्यतन जातियों की श्रेष्ठता–क्रम में विद्यमान है। इन चारों वर्णों मं शूद्र सबसे नीचे आता है, जिसका कर्तव्य तीनों वर्णों की सेवा करना बताया गया है।

लगभग 200 ई0 पू0 से 200 ई0 सन् के बीच शूद्रों की स्थित का ज्ञान मनु के विधि ग्रंथ 'मनुस्मृति' से होता है। मनु ने अपने ग्रंथ में शूद्रों के प्रति घोर अमानवीयता का परिचय दिया है।

प्राचीनकाल में शूद्रों की स्थिति नगण्य और उनका जीवन निरर्थक था। उस समय शूद्रों के जीवन का एक ही लक्ष्य था दास्य भाव से ब्राह्मण की सेवा करना। शूद्रों की स्थिति का जायदा लेते हुए इतिहासकार रामषरण शर्मा 'षूद्रों का प्राचीन इतिहास' में लिखते हैं कि उस समय शूद्रों की दषा और खराब हो गई थी।

मौर्यकालीन रचना 'कौटिल्य का अर्थषास्त्र' में कौटिल्य ने विहित किया है कि जब कोई शूद्र अपने को ब्राह्मण कहे, देवताओं की सम्पत्ति चुराए या राजा का बैरी हो तो, विषैली दवाओं का प्रयोग करके उसकी आंखें नष्ट कर दी जाएं या उससे आठ सौ पठ जुर्माना वसूला जाए। **कौटिल्य का अर्थशास्त्र सः आर श्याम शास्त्री, द्वितीय संस्करण, मैसूर, 1924, 10–10**

व्याख्याताकारों के अनुसार माना जाता है कि चातुर्वर्ण्य व्यवस्था गुण, कर्म एवं स्वभाव के आधार पर निर्धारित होती थी, जिसमें ऊंच नीच, उत्तम–अद्यम, स्पृष्य–अस्पृष्य ऐसी संकीर्णताओं के लिए स्थान नहीं था, कर्म के आधार पर ही व्यक्ति अपने वर्ण का निर्धारण और परिवर्तन कर सकता था। परन्तु उत्तर वैदिक काल आते–आते यह वर्णव्यवस्था जन्म पर आधारित होकर जाति के रूप में परिवर्तित हो गई। इस प्रकार चार वर्ण, चार जाति में बंट गए और इन्हीं से हजारों जातियां–प्रजातियां बन गई।

महात्मा गांधी द्वारा दिया गया 'हरिजन' शब्द का विरोध इस वर्ग द्वारा निम्नलिखित तर्कों के आधार पर किया गया :–

- हरिजन शब्द में दया का भाव निहीत है।
- मंदिरों में देवदासियों द्वारा जनित संतानों को भी हरिजन नाम दिया गया, जिनकी सामाजिक पहचान हरामी की थी।
- नामकरण करने वाले स्वयं को हरिजन क्यों नहीं बताते। क्या वे स्वयं हरिजन नहीं है।
- हरिजन शब्द में हीनता का भाव निहीत है।

सन् 1991 में उ0प्र0 और म0प्र0 सरकारों द्वारा और बाद में केन्द्र सरकार (चंद्रषेखर) सरकार द्वारा 'हरिजन' शब्द को प्रषासनिक, सामाजिक एवं व्यवहारिक स्तर पर प्रयोग न करके यह अध्यादेष जारी किया गया कि उन लोगों को यह नामकरण पसंद नही आया। लेकिन सरकार ने हरिजन के स्थान पर अनुसूचित जाति को शासकीय कार्यों के लिए उचित माना, जबकि दलित शब्द अपनी पहचान बना चुका था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

अमृत राय : प्रेमचंद की प्रासंगिकता,
हंस प्रकाशन 1985
इलाहाबाद

अमृत राय : कलम का सिपाही
हंस प्रकाशन 1981
इलाहाबाद

अम्बेडकर : सम्पूर्ण वाग्यंमय
प्रकाशन विभाग 1993
नई दिल्ली।

आनंद : हिंदी साहित्य में दलित चेतना
विद्या वितर, कानपुर, 1986

इन्द्र नाथ मदान : प्रेमचंद : एक विवेचन
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1989

– प्रेमचंद चिंतन व कला
सरस्वती प्रैस, इलाहाबाद

– ''गोदान'' मूल्यांकन और मूल्यांकन
नीलाभ प्रकाश, इलाहाबाद

ओम प्रकाश वाल्मीकि : दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र
राधा कृष्ण प्रकाशन,
नई दिल्ली, 2001

कंवल भारती : दलित विमर्श की भूमिका
इतिहास बोध प्रकाशन,
इलाहाबाद, 2002

जैनेन्द्र कुमार : प्रेमचंद : एक कृति व्यक्तित्व
पूर्वोदय प्रकाशन नई दिल्ली – 1967

प्रेमचंद : मानसरोवर
खंड आठ, हंस प्रकाशन
इलाहाबाद, 1966

प्रेमचंद : कर्मभूमि
: प्रकाशन संस्थान
दिल्ली – 1988
: गोदान
: सरस्वती प्रैस, इलाहाबाद, 1970
: निर्मला
: हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996

बेचैन और चौबे (सं0) : चिंतन की परंपरा और दलित सादित्य
नव लेखन, प्रकाशन, हजारी बाग 2000 – 01

बेचैन और मीनू : दलित दखल, श्री साहित्यिक
संस्थान, गाजियाबाद 2001

मैनेजर पांडेय : शब्द और कर्म,
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली – 1997

राजेन्द्र कुमार : प्रेमचंद की कहानियाँ
परिदृश्य और परिप्रेक्ष्य
अभिव्यक्ति प्रकाशन,
इलाहाबाद – 1993

रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहारस
नागरी प्रचारिणी सभा
वाराणासी

रमणिक गुप्ता : दलित संवेदना
सोच नवलेखन प्रकाशन,
हजारी बाग – 1998

शिवरानी देवी : प्रेमचंद घर में
आत्मा राम एंड संस
दिल्ली – 1981

शरण कुमार लिंबाले : हमें दया नहीं अधिकार चाहिए
(एक साक्षात्मकार) हंस, दि0–95
पृ0 – 33

सदानंद शाही : दलित साहित्य की अवधारणा
और प्रेमचंद, प्रेमचंद

www.ignited.in

साहित्य संस्थान, गोरखपुर

2000